International Journal of Information Movement Vol.I Issue VIII (December 2016)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 74-78

21वीं शताब्दी की प्रथम दशक की महिला लेखिकाओं के उपन्यासों की सामाजिक प्रवृत्तियाँ

सुखविन्द्र कौर
शोधार्थी, पीएच.डी. (हिन्दी),
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

1.0 प्रस्तावना :

नालन्दा विषाल शब्द सागर के अनुसार 'प्रवृत्ति' शब्द का अर्थ बहाव, प्रवाह, मन का किसी ओर को होने वाला झुकाव, उत्पत्ति का आरम्भ, रूझान, लगन आदि हैं।''[1]

डॉ. हरेदव बिहारी राजपाल हिन्दी शब्द कोष के अनुसार 'प्रवृत्ति' शब्द का अर्थ मन का झुकाव, प्रवाह, बहाव, आचार–व्यवहार, सांसारिक आसक्ति आदि है।''[2]

21वीं शताब्दी की महिला लेखिकाओं के ग्रामीण उपन्यासों में परिवर्तित परिस्थितियों का प्रभाव दृष्टि गोचर होता है। परिवर्तन का प्रभाव साहित्य पर अवष्य पड़ता है। एक युग का विषय दूसरे युग की आवष्यकताओं के अनुसार बदलता रहता है। 21वीं शताब्दी के प्रथम दषक के ग्रामीण उपन्यासों में अनेक आधुनिक प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं।

2.0 सामाजिक प्रवृत्तियाँ :

समाज व्यक्तियों का समूह है और समूह में रहने वाले व्यक्ति को सामाजिक कहा जाता है। डॉ0 विभुवन राय 'समाज' की परिभाषा इस प्रकार करते हैं–''समाज व्यक्ति की अतःक्रियाओं से विकसित एवं निर्मित सचेत मानवीय संबंधों का एक जटिल एवं गत्यात्मक स्वरूप है''[3] इससे स्पष्ट होता है कि व्यक्ति समुदाय जब भावात्मक आकार या संगठित संस्था का रूप लेता है, उस समय व्यक्ति, व्यक्ति मात्र न रहकर समाज–षरीर का एक अंग बन जाता है। साहित्य समाज सापेक्ष होता है। उसमें युग–चेतना मुखर होती है। इसी कारण उसमें समकालीन समाज, उसकी परंपराएँ, प्रथाएं तथा चेतना आदि का सजग चित्रण मिलता है। साहित्य समाज से सामग्री लेता है और समाज साहित्य से प्ररेणा ग्रहण करता है। साहित्यकार अपने सामाजिक परिवेष से अनुभूतियां प्राप्त करता है और वे ही अनुभूतियां उसकी कृतियों में अभिव्यक्त होती है। अतः साहित्य के अंतर्गत समाज का चित्रण किया जाता है।

2.1 समाजवाद :

समाज शब्द से उस व्यवस्था का बोध होता है, जहाँ पर अनेक लोग परस्पर सहयोग से एक साथ मिलकर एक साथ चलने का प्रयत्न करते हैं। इस व्यवस्था में एक व्यक्ति की क्रिया दूसरे की क्रिया की पूरक होती है। समाजवाद समाज में फैले हर प्रकार के वैषम्य को दूर करने का प्रयास करता है। यह वाद अपने समता के सिद्धान्त के आधार पर समाज में समानता लाना चाहता है। समाजवाद व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व देता है। यह वाद व्यक्तिगत लाभ की भावना के स्थान पर सामाजिक सेवा की भावना उत्पन्न करना चाहता है। समाजवाद का आधार समानता है। आज संसार के विभिन्न देषों में समाजवाद की स्थापना के प्रयास हो रहे हैं।

21वीं शताब्दी के प्रथम दषक के ग्रामीण उपन्यासों में अनेक पात्र सामाजिक विचारधारा से परिपूर्ण हैं। उपन्यासों के निम्न उद्धरण इस सन्दर्भ में प्रस्तुत हैं– ''उन्होंने सोचा, इस मिथिलाभूमि में जो लोग परदा प्रथा समाप्त करने, स्त्री–षिक्षा की शुरूआत करने में जुटे थे उनमें उनके स्वामी अग्रणी थे। कई दिषाओं में अलख जगाने के बाद इस ओर आये थे। इधर की मध्य जाति और दलित आबादी ने इसे हसरतभरी निगाहों से देखा था। स्वागत जोरदार किया था। परन्तु द्विजों की दुनिया ही अलग थी। उन्हे अपने वर्चस्व की दुनिया में किसी भी नवजागरण को स्थान देना अभीष्ट नहीं लगता। उन्हे लगता उनके एकाधिकार के परकोटे में सेंध लग रही है। युग–युग से वे कहते आ रहे हैं, समाज सुनता आ रहा है। विषेष रूप से सभी वर्ग की स्त्रियाँ तथा मध्य जाति एवं दलित वर्ग के लिए इनका वचन ही वेद रहा है। शास्त्रों में ये लिखा है कहकर अपनी चलाते रहे हैं ऐसे द्विजवर को पुनर्जागरण की हवा तीखी क्यों न लगे। शेष आबादी अनपढ़, जाहिल रहे, यह उनके लिए अच्छा था। कम से कम कोई तर्क तो नहीं करता। शास्त्रों में क्या लिखा है, जान ही न पाता। वेद क्या है पता नहीं लगता, वे तो 'मुख वेद' ही जानते। इसलिए जो चलने लगी बयार तो उन्हें चढ़ने लगा बुखार।

दादी कहती हैं–तुम्हारे दादा जी जो चाहते थे वह कर कहाँ सके। अकाल काल के गाल में समा गये, परन्तु एक बड़े ब्राह्ाण समाज को नाराज कर दिया अपनी कथनी और करनी से।''

''लेकिन दादी, अब तो इनकी स्त्रियाँ पढ़ने–लिखने लगी। समाज में भी वैसा सुधार आ गया है भले ही मात्रा कम हो।'' जलजा कहती।

''एक इलाके का बीड़ा जिसने उठाया था वह नहीं है। इसका मतलब ऐसा थोड़े ही है कि पूरी प्रक्रिया थम गई। हवा को कौन रोक सकता है? वातावरण को बदलने से रोका नहीं जा सकता है। देष की आजादी के बाद हमारा सरकारी फार्मूला है यह।''[4]

''साक्षरता कार्यक्रम से जुड़ने वाले नवयुवक–नवयुवतियों के अपने कारण होते हैं। सबके अलग–अलग कारण। कुछ युवा बेरोजगारी दूर करने को आते हैं, तो कुछ सामाजिक कार्य के आधार पर राजनीति में प्रवेष करना चाहते हैं, कुछ इलाके में अपनी पहचान बनाने आते हैं तो कुछ वर्चस्व स्थापित करना चाहते हैं, जलजा का कारण लगभग उन्हीं में से एक था। उसे रोजगार चाहिए था। परन्तु ऐसा रोजगार जो आगे की दिषा तय कर सके। साक्षर होना चाहिए। यह जानकारी देने के लिए जलजा के ठोस तथा मौलिक तर्क थे। उसका मानना था कि स्त्री को सबसे पहले साक्षर तथा षिक्षित होना चाहिए। तभी वह अपने बच्चों को प्रारम्भिक षिक्षा दे पायेगी। इच्छा हो तो दीन–दुनिया की खबर रख सकेगी। स्वास्थ्य तथा सफाई की सूचना सही–सही ले पायेगी। जीवन जीने की सच्ची कला का उपभोग कर पायेगी।''[5]

''इसके दादाजी ने सर्वप्रथम सामाजिक क्रांति का बिगुल फूँका था। स्वतन्त्रता संग्राम में तथा गाँधी जी के खादी आन्दोलन में पूरा देष सुलग उठा था। इसके दादा जी ने पहला महिला विद्यापीठ अपनी जमीन दान कर खोला था। परदा प्रथा के विरोध में खड़े हुए थे, सामाजिक कुरीतियों का व्यवहारिक रूप में ऐसा विरोध किया था कि स्वजातीय बाल–विधवा कन्या से विवाह किया था। देष की आजादी के बाद प्रलोभन के प्रस्ताव को ठुकारते हुए, अत्यन्त पिछड़े इलाके में सेवा करने चले गये। वहीं उन्होंने जमीन खरीदी और जागरूकता का पाठ पढ़ाना शुरू किया था कि दुर्घटना में चल बसे। शैलजा ने अपनी दादी माँ को देखा था अहैतुक परामर्ष और सेवा देती अहर्निष। नगर में घर रहते हुए भी वे उस स्थान को छोड़ न सकी। उस स्थान पर एक समरस प्रकार का समाज तो बना, भले ही वह सीमित हो।''[6]

''हम तो यह मानते हैं कि यहाँ खेती व्यवसाय है तो डैकेती व्यापार है। पढ़े–लिखे लड़कों को जब नौकरी नहीं मिलती तो यमुना और चंबल का आँचल खुला मिलता है। इस खादर में रहने वाला आदमी डाकुओं से गुरेज करेगा तो बसर कहाँ होगा? अजीत भी कह रहे थे कि देष में चोर–डाकू फैले हैं, बस बोली–बानी और पहरावा अलग है। नहीं तो अजीत को लुटना पड़ता, तब नौकरी मिलती? मेज–कुर्सी पर बैठने वाले बन्दकू–पिस्तौल लेकर नहीं, कलम–कागज के हथियारों से डाका डाल रहे हैं। अपने नेता, मंत्री भाषणों के जरिए ही सेंध मार जाते हैं और हम हाथ जोड़े ही रह जाते हैं। क्या करें, आदत से लाचार हैं। शुरू से ही हाथ जोड़ना, पाँव पड़ना सिखया जाता है। अजीत कह रहे थे, ऐसा रिवाज किसी मुल्क में नहीं।''[7]

''यह तो तब की बात है, जब देष की करोड़ों स्त्रियों में से लाखों षिक्षा प्राप्त कर रही थी। मगर आज करोड़ों औरतें षिक्षित हैं, उनमें से ज्यादातर मीरा जैसी हैं, जो पुरूषों के दिए फैसलों को नैतिकता का नाम देकर पूरी निष्ठा के साथ उनको स्वीकार करती हैं और जीवन–भर ढोती रहती हैं, जबकि उनको दहेज–कानून, हिंसा और संपत्ति के स्त्री–अधिकारों के बारे में सब कुछ मालूम है।''[8]

''देख लो औरतों को, वे कितनी बदल गई। मटल्लू की बहू रिष्ते के ससुर–जेठों के पाँव नहीं पड़ रही, हाथ जोड़कर नमस्ते कर रही थी, जैसे आज ही प्रधान पद की पदवी पर बैठ गई हो। करताल की जनी चरमौटा में घर–घर गई, चुपचाप सिंगार–पिटार सरका देती थी और कहती बैन, वोट दोगी तो हमसे न्याय–इंसाफ लोगी। पंचायत में हम बैठेंगे तो तुम्हें भी बुलाएंगे। अपन ऐसे नेता नहीं कि वोटन के बाद मौं फेर लिया, अजमा लेना ऐन।'' ''तुम्हारी चलेगी भी अमगाँव वाली मामी? मीरा ने पूछा था। ''काय नहीं चलेगी? हम यहाँ क्या काऊ से पूछ के आए हैं? अपनी चलाएँगे तभी चलेगी।''[9]

''इंसान को और जमीन को, दोनों की खोज–खबर न लो तो दोनों ही पड़िया हो जाते हैं, बंजर हो जाते हैं। दोनों को देखभाल की जरूरत है, खाद–पानी देते रहना जरूरी होता है बीवी, नहीं तो बड़े–बड़े पेड़ सूख जाते हैं,'' सुगराबी बोली। ठीक कहती हो सुगराबी। जमीन की ही तरह इंसान पड़िया हो जाता है, बेकार, बेजान। इन्सान दूसरे इन्सान की हमदर्दी के सहारे ही जिन्दा रह पाता है, नहीं तो खत्म हो जाता है।''[10]

''जमाना तो ऐसा ही था और ऐसा ही रहेगा। हमेषा दुनिया में अच्छे और बुरे इन्सान रहे और इन्ही के बल पर दुनिया चली है। अरे, नेकी और बदी क्या कभी घटी है जो अब घटेगी? यह तो जब से दुनिया बनी तब से इन्हे भी अल्लाह ने उतारा था और जब तक यह दुनिया रहेगी तब तक रहेंगे। नेकी और बदी यह तो अल्लाहमियाँ के तराजू के दो पल्ले हैं। जरा इधर ज्यादा हुआ तो उधर रख दिया और जरा उधर ज्यादा हुआ तो इधर रख दिया। इसी का नाम संसार है और यह संसार ऐसा ही अपने बिगड़े दर्रे पर था और ऐसा ही रहेगा। इसे तो हमें अपने हिसाब से रहने के काबिल बनाना पड़ता है। तराष कर अपने मन–मुताबिक गढ़ना पड़ता है।''[11]

''दुनिया में आए सारे प्राणियों में केवल मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जिसे जीने के लिए, खड़े होने के लिए समाज की आवष्यकता पड़ती है। उत्पादन ओर वितरण की व्यवस्था के अनुसार हर समाज का एक गठन होता है। जब लोग इकट्ठे होकर समूह में कोई व्यापार तथा श्रम करते थे, अपने कार्यों के द्वारा ही वह गण या कबीले के रूप में संगठित होते हैं। अलग समूह के पास अपना अलग–अलग तरह का कार्य होता था और यहीं से वर्णों और बिरादरियों का जन्म हुआ जो आगे जाकर समाज कहलाया। लघुजाति ही संगठित होकर बड़ी जाति को मान्यता देती है।''[12]

''ऐसा मत कहो। कही एक बल्ली से मंडप बनता है? चार खम्भे लगते हैं। ऐसे ही संसार का भी चलन है। हम सब एक–दूसरे से जुड़े हैं।''[13]

''सच में अब वक्त बदल रहा है। आज का कष्मीरी लड़का किसी अनपढ़ मिलिटेंट को हीरो नहीं मानता, अमिता जी। अब वो 'फेम गुरूकुल' और इंडियन आइडल देखता है। इन्फोसिस के नारायण मूर्ति उसके असली सक्सेस आइकन हैं। वह सॉफ्टवेयर रिवोल्यूषन का हिस्सा बनना चाहता है। आजकल का कष्मीरी यूथ क्रिकेट खेलता है..... इंटरनेट सर्फ करता है.. ... डेटिंग पर जाने लगा है।''[14]

''यही तो, हमने बदलते वक्त के साथ समाज के बदलावों की अपील की है और आज की पढ़ी–लिखी कष्मीरी औरत का नया चेहरा, इस्लमिक पहचान के साथ दुनिया के सामने रखने की हिम्मत की है। हमारी बदबख्ती यह है कि इस्लाम और कुरान के उस पहलू को दुनिया के सामने रखा ही नहीं, जिसमें औरत के हक की बात की गई है।''[15]

2.2 जातिवाद :

जातिवाद जाति से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण समस्या है। यह वह भावना है जो एक उपजाति के सदस्यों को अपनी ही जाति के लोगों का पक्ष लेने के लिए प्रेरित करती है जिससे दूसरी जाति के हितों का हनन होता है। जातिवाद एक जाति के सदस्यों की अंधनिष्ठा है जो आज धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक सभी क्षेत्रों में व्याप्त है। जातिवाद प्रजातंत्र के लिए अहितकर है। गाँधी जी ने देष से जातिवाद को मिटाना चाहा था जबकि भारतीय गाँवों में जातिवाद का जोर स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात बढ़ा है। जातिवाद से सामाजिक समानता, सामाजिक न्याय और औचित्य की भावना का ह्रास होता है।

21वीं शताब्दी के प्रथम दषक के उपन्यासों में भी जातिवाद की भावना दिखाई देती है। उपन्यासों के निम्न उद्धरण इस संदर्भ में प्रस्तुत हैं–

''धर्म से डराने वाले, खुद बड़े ढोंगी हैं। धर्म के नाम पर इन्सान का, देष का बँटवारा करते हैं? कुटनीति, स्वार्थ, लड़ाई और खून–खराबे से कभी किसी का भला नहीं हुआ है। धर्म के नाम से जब भी लड़ाई हुई तब नाष ही हुआ है। देखना जैनब, आज जो लोग बँटवारे की बुनियाद धर्म पर रख रहे हैं, उनके देष में अब जात–पात ही रह जाएगा। अमन चैन, सुख–षान्ति सब खत्म हो जाएगी। जात से ही इंसान की पहचान रह जाएगी। इन्सानियत खत्म हो जाएगी लोग जानवरों की तरह एक–दूसरे को खाएँगे। जातियों की लड़ाइयाँ ही रह जाएगी। एक कँटीला पेड़ लगाओ तो कितने और कँटीले पेड़ उग आते हैं। जरा सी खरपतवार सारी जमीन फसल को खा जाती है। उसकी जड़ कभी खत्म नहीं होती है, ऐसा ही अब दोनों देषों में भी होगा। कंकड़–पत्थर और कूड़ा–करकट की तरह ही कचरा लोग बच जाएँगे।''[16]

''क्या बताऊँ, बड़ी मालकिन, बिरादरी भी बड़ी बुरी चीज है। बिरादरी से लाभ–हानि तो कुछ नहीं, बस डरते रहो। सर पर तलवार लटकती सी रहती है, भय सताता रहता है। बिरादरी की सारी लड़कियाँ उठ रही थी, उसी चिन्ता में लक्ष्मी को भी ब्याह दिया था। अब चिन्ता सताती है। कच्ची देह है, ऐसे में माँ बन गई तो सारी जिन्दगी गृहस्थी के दलदल में फँसी रहेगी।''[17]

''मुसलमानों में भी ऊँची और छोटी जातियाँ थी। मस्ज़िद में जरूर सब एक कतार में इकट्ठा होकर नमाज़ पढ़ लेते थे पर निजी जिन्दगी में कुरान की ताकीद को भूल जाते थे। रोटी में तो परहेज नहीं था पर बेटी लेने और देने में खानदानी हड्डी देखी जाती थी। बड़ी जात के मुसलमान कभी छोटी जात के लोगों में रिष्ता नहीं करते थे। यही कारण था कि अधिकतर लोग आपस में ही बेटी लेना–देना कर लेते थे।''[18]

''वोट तो ये अमुक या तमुक के लिए दिया करते तो अब भी वही हुआ। एक अन्तर जरूर आया कि अमुक और तमुक बदल गये। जातीय सामन्तों की बाढ़ आ गयी। मण्डल के सामन्त तो कमण्डल के सामन्त, अम्बेडकर के सामन्त तो चूहड़मल के सामन्त। इन सामन्तों की स्त्रियाँ तैंतीस प्रतिषत आरक्षण लेकर भी चौधराइन नहीं बनी। गाँव–गाँव में खेमे बन गए। स्त्रियाँ जो दिलजोई करने में अव्वल मानी जाती हैं ने भी अपने–अपने चौखटों की रेखा खींच ली।''[19]

''एक बात हो तो कहूँ न! अपने मन से इन्दिरा आवास की अनुषंसा कर देती है, मैं जो कहूँ उल्टा कर देती है। किसान श्री के लिए मैंने अपने रवि भैया का नाम भेजने को कहा था, उसने एक न सुनी, बुच्ची मल्लाहिन का नाम प्रस्तावित

कर दिया। अब देखिएगा इलाका सूना चला जाएगा, दोनों में से किसी को न मिलेगा औरत जात, निरी बेवकूफ है। बुरा न मानिए दीदी आप को नहीं कहा। हमारे समाज की जनजाति की बात की है।''[20]

''आ लाखों बैठ, पास की कुर्सी पर, और सुन गौर से। मुझे इस बात का गम नहीं है कि तेरी सरपंच ने मेरा नाम सिर्फ किसानश्री के लिए क्यों नहीं प्रस्तावित किया मुझे तो दुख है कि उस बनबाहर बुचिया मल्लाहिन के साथ उससे नीचे क्यों मेरा नाम लिखकर भेजा? अरे मेरा नाम भेजना ही क्यों था? मेरी इज्जत उतारी।''[21]

''अरे, काय को? अपनी बिरादरी से तीन जनी ठाड़ी हैं। पहले जमाने नहीं रहे कि आदमी औरत को सात पर्दों में छिपाकर रखता था। अब का जमाना सरकार ने ऐसा उल्टा कि हर कोई अपनी जनी को आगे करे फिर रहा है और अपुन पीछे से निषाना साध रहा है। समझ लो कि तीर–कमान और शतरंज का मिला जुला खेल है।''[22]

2.3 दलितवाद :

'दलित' शब्द लगभग बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही प्रयोग में लाया जाने लगा है। विभिन्न शब्दकोषों में 'दलित' शब्द का अर्थ दबाया हुआ, रौंदा हुआ, शोषित, मर्दित मिलता है। संविधान के अन्तर्गत विषिष्ट सामाजिक वर्ग को दलित के अन्तर्गत रखा गया है, ये वर्ग हैं–अस्पृष्य, जरायमपेषा, खानाबादोष, घूमंतू जातियां। अतः मूल अर्थ की दृष्टि से दबाया हुआ, रौंदा हुआ, शोषित, उपेक्षित व्यक्ति दलित है, चाहे वह किसी भी जाति, लिंग, पंथ, भौगोलिक क्षेत्र अथवा धर्म का हो। व्यक्ति का सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं शारीरिक–मानसिक अथवा किसी अन्य कारण से शस्त्र अथवा शास्त्र के आधार पर शोषण, उपेक्षा, अवमानना, बहिष्कार किया गया हो वह दलित है।

21वीं शताब्दी के प्रथम दषक के ग्रामीण उपन्यासों में भी दलितों से संबंधित अनेक उद्धरण आये हैं, जो कि इस प्रकार हैं–

''सोनी का परिवार एक खाता–पीता परिवार था। मज़दूरों के गाँव में वह अकेला किसान परिवार था। दलित वर्ग का होने के बावजूद इस घर के लड़के पढ़े–लिखे थे। सोनी इस इलाके के दलित घरों से पहली लड़की थी जिसने मैट्रिक पास किया था।''[23]

''आप द्विज समाज से कटकर आश्रमवासिनी हो गई थी–मैं तो नहीं हूँ।–''– दादी को हैरत हुई थी क्या उनके सामाजिक संघर्ष की यात्रा यहाँ आकर थम गयी थी? व्यर्थ हो गया समतावादी समाज का सपना? अगर ऐसा था तो क्यों बनाया आश्रमनुमा आषियाना। दादी सोचने लगी इस पिछड़े इलाके में दलितों के बीच अपना सरोकार बनाने में क्या मात्र उनका लाभ था? वे अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक न थे। कहाँ से कैसे पानी पीते हैं और कैसा भोजन करते हैं। नहीं पता था; भोजन–पानी की गड़बड़ी से बीमार पड़ते हैं, झाड़फूँक के बल पर बीमारी का इलाज करते हैं फिर कैसे स्वस्थ रहें। इतने दिनों के अथक परिश्रम के बाद समझाने में सफल हुई कि सारी बीमारियों की जड़ दैवी कोप नहीं है सारी मौतों की जिम्मेदार तथा कथित डायनें नहीं हैं। परन्तु क्या उनसे कुछ न सीखा? बहुत कुछ सीखा। जीवन सीखा। खेत डूब जाने के बाद भी–'बुड़बक की खेती अगले साल' का मर्म जाना। यह जाना कि एकबारगी किसी का अन्त न होता। अनपढ़ लोगों के पास अदम्य साहस था, उनका तकियाकलाम था–''जो जीये सो खेले फाग'। सबसे अधिक यह उत्साहित करने वाली बात थी कि स्त्रियों को वही अधिकार मिला था जो पुरूषों को था। यह सामाजिक मान्यता प्राप्त तथ्य था। स्त्री भी पंचायत बैठाकर पुरूषों को छोड़ सकती थी; पुनर्विवाह को ससम्मान मान्यता थी। द्विज समाज अपने अंहकार में भरा–भरा सा सब कुछ देखते हुए भी अन्धा बना हुआ था। शैलजा उन्ही अन्धों में से एक थी।''[24]

''मैं भी सोच–विचार कर कहूँगी न। तुम इतने बड़े परिवार के साहबजादे वह साधारण मजलूम किसान की बेटी। तुम उच्च जातीय मुस्लिम हो वह दलित हिन्दू है। इतने सारे अन्तर को पाटने के लिए किसी माध्यम की नहीं उत्कट दोतरफा प्रेम चाहिए यदि तुम स्वयं में और उसमें वह प्यार, वह अभाव वह तड़प पैदा कर सको तो कोई बाधा नहीं आयेगी। तुम्हें किसी माध्यम की जरूरत नहीं होगी।''[25]

3.0 संदर्भ सूची :

1. नालन्दा विषाल शब्द सागर, पृ. 907
2. डॉ. हरदेव बिहारी–राजपाल हिन्दी शब्द कोष पृ. 544
3. डॉ. त्रिभुवन राय, स्वांतत्रयोत्तर उपन्यास : सामाजिक सांस्कृतिक यथार्थ के आयाम पृ. 107
4. उषा किरण खान, पानी पर लकीर पृ. 13–19
5. उषा किरण खान, पानी पर लकीर पृ.–16

6. उषा किरण खान, पानी पर लकीर पृ. 65
7. मैत्रेयी पुष्पा, त्रियाहठ पृ. 66
8. मैत्रेयी पुष्पा, त्रियाहठ पृ. 68
9. मैत्रेयी पुष्पा, त्रियाहठ पृ. 70–71
10. मेहरून्निसा परवेज़, पासंग पृ. 95–96
11. मेहरून्निसा परवेज़, पासंग पृ. 126–127
12. मेहरून्निसा परवेज़, पासंग पृ. 148
13. मेहरून्निसा परवेज़, पासंग पृ. 198
14. मनीषा कुलश्रेष्ठ षिगाफ़ पृ.131
15. मनीषा कुलश्रेष्ठ षिगाफ़ पृ. 134
16. मेहरून्निसा परवेज़, पासंग पृ. 106
17. मेहरून्निसा परवेज़, पासंग पृ. 23
18. मेहरून्निसा परवेज़, पासंग पृ. 148
19. उषा किरण खान, पानी पर लकीर पृ. 90
20. उषा किरण खान, पानी पर लकीर पृ. 131
21. उषा किरण खान, पानी पर लकीर पृ. 132
22. मैत्रेयी पुष्पा, त्रियाहठ पृ. 21
23. उषा किरण खान, पानी पर लकीर पृ. 8
24. उषा किरण खान, पानी पर लकीर पृ. 130
25. उषा किरण खान, पानी पर लकीर पृ. 126–127